कार्मण शरीर

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

प्राणी इस संसार में आकर कर्म करता है। अच्छा या बुरा कर्म शरीर के माध्यम से होता है। शरीर एक मन्दिर है। इसे अशुद्ध नहीं करना चाहिए। शरीर के भीतर आत्मा विराजमान है। मन्दिर में ईश्वर के विराजमान होने से मन्दिर का महत्व बढ़ जाता है। शरीर में आत्मा के विराजमान होने से ही शरीर का महत्व है। कार्मण शरीर गंगोत्री है। जन्म–जन्मान्तर में घटित होने वाली घटनाएं समाहित रहती है। कार्मण शरीर, लिंग शरीर आदि इसके अनेक नाम हैं। इसमें चार्जिंग भावों के द्वारा होती है। भावों के अनुसार कारण बनता है। अच्छा या बुरा भाव कार्मण शरीर कहलाता है। कार्मण शरीर यदि न हो तो स्थूल शरीर नहीं बन सकता।

जैसा बीज पूर्व भव में बोया गया है उसी के अनुरूप वर्तमान भव तैयार होता है। जैसा बीज बोया है पौधा वैसा ही तैयार होगा। व्यवहार शुद्धि करने से कार्मण शरीर शुद्ध होता है। कर्मों का प्रारब्ध निमित्त लाकर खड़ा कर देता है। वह संयोग इकट्ठा करता है। समय आने पर उसका भुगतान करना पड़ता है। पूर्व जन्म में जो जितना लेनदेन किया है वह कारण भाव वर्तमान जन्म में किसी न किसी रूप में भुगतना पड़ता है। यह कुदरत का कानून है। यह कार्य कारण से जुड़ा है। कार्मण शरीर में जन्म–जन्मान्तर का लेनदेन इकट्ठा रहता है। मोबाईल के सीम की तरह यह बहुत सूक्ष्म होता है किन्तु इसकी क्षमता बहुत अधिक होती है। इसमें सभी कर्म समाहित रहते हैं। समय आने पर अपना फलदान करते हैं।

चेतन शरीर का निर्माता है। शरीर उसका अधिष्ठान है। इसलिए दोनों पर एक दूसरे की क्रिया–प्रतिक्रिया होती है। शरीर की रचना चेतन विकास के आधार पर होती है। चेतना विकास के अनुरूप शरीर की रचना होती है। शरीर रचना के अनुरूप चेतना की प्रवृत्ति होती है। शरीर निर्माण काल में आत्मा उसका निमित्त बनती है। आत्मा शरीर से सर्वथा भिन्न नहीं होती, इसलिए आत्मा की परिणति का शरीर पर और शरीर की परिणति का आत्मा पर पड़ता

है। देहमुक्त होने के बाद आत्मा पर शरीर का कोई प्रभाव नहीं होता, किन्तु दैहिक स्थितियों में जकड़ी हुई आत्मा के क्रियाकलाप में शरीर सहायक और बाधक बनता है।

जड़ पदार्थ में हलन–चलन नहीं होता। जैसे पत्थर लकड़ी या अन्य निर्जीव पदार्थ एक जगह रखे जाते हैं तो उसमें गति नहीं होती है। जड़ पदार्थ चेतन भाव से रहित होता है, इसलिए उसे जड़ कहा जाता है। वस्तु के हलन–चलन को गतिशीलता कहा जाता है। धर्म आत्मा का लक्षण है, गुण है। जो धारण करता है या धारण करने की शक्ति जिसमें होती है वह धर्म है। गुणों का आचरण में आना आवश्यक है। धर्म बहुत ही व्यापक शब्द है। इसके अंतर्गत भावों की शुद्धता, मन की निर्मलता और सात्विक विचार का अधिक महत्व है। धर्म मूलतः किसी वस्तु का सहज गुण है। इसी प्रकार जितने भी पदार्थ हैं, उन सबका स्वाभाविक धर्म होता है। जब पदार्थों में विकृति उत्पन्न की जाती है तो उनके गुण धर्म भी बदल जाते हैं। आत्मा एक ऐसा तत्व है जिसमें किसी प्रकार की विकृति नहीं आती है। यह अपने स्वरूप में चैतन्य युक्त है। शेष जितने भी पदार्थ हैं, वे भौतिक तत्व हैं। उन पदार्थों में परिवर्तन, परिवर्धन होता रहता है।

आत्मा और जड़ का जब संयोग होता है तो जड़ पदार्थ भी आत्मवत् प्रतीत होने लगता है। शरीर जड़ है और आत्मा चेतन। शरीर से जब आत्मा का संयोग होता है तो जड़ शरीर भी आत्मवत् प्रतीत होने लगता है। शरीर से अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कार्य किये जाते हैं। मूलतः आत्मा के शुद्धि और अशुद्धि का कोई प्रश्न नहीं है। शरीर में शुद्धता और अशुद्धता देखी जाती है। यदि मानव अच्छा कर्म करता है तो पुण्यलोक की प्राप्ति होती है और यदि बुरा कार्य करता है तो उसे नरक की प्राप्ति होती है। इसी को ध्यान में रखकर यह बात कही गयी है कि धर्म आत्मा को शुद्ध करता है। आत्मा को न तो आंखों से देखा जा सकता है, न वाणी से कहा जा सकता है, न तो अन्य इन्द्रियों से उसे जाना जा सकता है, न तपस्या और कर्म से ही उसे जाना जा सकता है। जिसके द्वारा सारी ज्ञानेन्द्रियां अपने–अपने विषय का ज्ञान कराती हैं उसे किस साधन से जाना जाय। इसलिये कहा गया है कि 'ज्ञानप्रसादेन तं पश्यते' अर्थात् ज्ञान के द्वारा ही उसे जाना जा सकता है। जप, तप निखिलकर्मानुष्ठान ये सारे साधन आत्मविषयक आचार में परिगणित हैं, किन्तु ये केवल चित्त शुद्धि तक ही सीमित हैं।

शुद्ध चित्त में ज्ञान का प्राकट्य उसी प्रकार होता है जैसे स्वच्छ कांच में प्रतिबिम्बोपलब्धि होती है।

यह संसार जड़तत्व और चेतनतत्व दो तत्वों से मिलकर बना हुआ है। जड़तत्व भौतिकतत्व है और आत्मतत्व आध्यात्मिक तत्व है। मानव जीवनभर पंचेन्द्रियों से जड़तत्वों का ही दर्शन करता है और उसी के साथ संबंध स्थापित किये रहता है। उसके नष्ट होने पर उसे दुःख होता है। जब उसकी वृत्ति ऊर्ध्वमुखी होती है, तब वह आत्मतत्व की ओर गति करता है। आत्मतत्व अविनाशी तत्व है और भौतिक तत्व विनाशशील है। पंचेन्द्रिय का सम्पर्क भौतिकतत्व से ही होता है।